

## भारतीय ज्ञान परम्परा में कबीर की भूमिका

डॉ. नमिता जैसल

सहायक आचार्य(हिंदी विभाग)

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

Email-namitabhu123@gmail.com Mobile no -8318631875

Received– 26 September - 2026

Accepted– 28 September - 2026

Published– 30 September-2026

Corresponding Author-

डॉ. नमिता जैसल

सहायक आचार्य(हिंदी विभाग)

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

Email-namitabhu123@gmail.com

Mobile no -8318631875

DOI- <https://doi.org/10.67275/SU.2026.041514>

Funding Policy-

‘Shodh Utkarsh’ is an independent journal and receives no financial support or grant from any public, commercial, or not-for-profit organization.

वित्त पोषण नीति-

‘शोध उत्कर्ष’ एक स्वतंत्र पत्रिका है। इसे किसी भी सार्वजनिक, वाणिज्यिक या गैर-लाभकारी संगठन से कोई वित्तीय सहायता, अनुदान या फंडिंग प्राप्त नहीं होती है।

Copyright Notice -

© 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC-BY 4.0).

कापीराइट सूचना-

© 2026 लेखक। यह कार्य क्रिएटिव कॉमन्स अ Attribution 4.0 इंटरनेशनल लाइसेंस (CC-BY 4.0) के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।



**शोध सार:** भारतीय ज्ञान परंपरा अत्यंत समृद्धशाली और विविधतापूर्ण रही है। यह परंपरा मात्र वेदों, उपनिषदों और शास्त्रों तक सीमित नहीं थी, बल्कि भक्ति साहित्य संत वाणियों एवं जनप्रचलित लोक परंपराओं, के माध्यम से समाज के व्यापक वर्गों तक भी पहुँची। इस ज्ञान परंपरा को लोकजीवन से जोड़ने में जिन संतकवियों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है उनमें संत कबीर का नाम सर्वोपरि है। वे संत कवि के साथ-साथ महान समाज सुधारक और उच्चकोटि के विद्वान भी थे। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक विमर्श को अत्यंत ही सरल भाषा में प्रस्तुत कर जनमानस को जागृत किया तथा भारतीय ज्ञान परंपरा को एक जनमुखी स्वरूप प्रदान किया।

**बीज शब्द-** ज्ञान परम्परा, वेद, उपनिषद, धार्मिक, दार्शनिक, औपचारिक, वाणी, वसुधैव कुटुम्बकम्, रहस्यवाद, शास्त्रसम्मत **मूलआलेख** : भारतीय ज्ञान विज्ञान की परम्परा अति प्राचीन और समृद्ध रही है, इसकी जड़े बहुत गहरी हैं। भारत प्राचीन काल से ही विद्या का केंद्र रहा है। यहाँ आकर अनेक विदेशी विद्वानों ने भारतीय ज्ञान को अंगीकार करते हुए उसे विश्व में प्रसारित करने का कार्य किया है, अनेक पाश्चात्य खोजों और उनके अविष्कार में मूल सूत्र भारत के ही विद्वान हैं। हमारे ऋषियों, महर्षियों और मुनियों की तप साधना का पुण्य प्रसून आज पूरे विश्व में खिल रहा है।

भारतीय ज्ञान परम्परा को पल्लवित करने, प्रसारित करने एवं सामान्य ज्ञान के लिए सुलभ बनाने में अनेक विद्वानों, दार्शनिकों, मनीषियों एवं कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्हीं मनीषियों में एक नाम हिंदी साहित्य के भक्तिकालीन संत कवि कबीरदास की है। कबीरदास के सम्बन्ध में रामचंद्र शुक्ल ने लिखते हैं कि, “कबीरदास ने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावनात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपतिवाद का मेल करके अपना पंथ खड़ा किया। उनकी वाणी में ये सब अवश्य स्पष्ट लक्षित होते हैं।”<sup>1</sup>

कबीरदास एक दार्शनिक कवि समाज-सुधारक एवं उपदेशक रहे हैं, उन्होंने अपने उपदेशों के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने एवं भारतीय ज्ञान दर्शन को सर्वसुलभ बनाने का प्रयत्न किया। भारतीय ज्ञान परम्परा एक विकसित परम्परा रही है इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता है परन्तु इस परम्परा में समय के साथ अनेक विकृतियाँ आ जाने के कारण सामान्य जन की पहुँच से दूर होने लगी। जिसे कबीरदास ने अपने अनुभव-जनित ज्ञान के माध्यम से पुनः सर्वजन सुलभ बनाने का कार्य किया तथा भारतीय ज्ञान परम्परा को पल्लवित किया।

भारतीय ज्ञान परंपरा मूलतः अनुभवप्रधान, शास्त्र-सम्मत, गुरुमुखी और जीवन व्यवहार-संबंधी रही है। यह परंपरा चार आयामों में अभिव्यक्त होती है:

1. श्रुति ज्ञान (वेद-उपनिषद आधारित)
2. स्मृति ज्ञान धर्मशास्त्र, पुराण आदि
3. अनुभवजन्य ज्ञान योग, ध्यान, साधना
4. लोकज्ञान (जनसमाज से उत्पन्न और प्रसारित ज्ञान)

कबीर इसी चौथे लोकज्ञान के माध्यम से परंपरा में हस्तक्षेप करते हैं और उसे एक नवचेतना प्रदान करते हैं।

**कबीर का जीवन और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य**

कबीर का जन्म 15वीं शताब्दी के आसपास काशी (वर्तमान वाराणसी) में हुआ माना जाता है। वह समाज के उस दौर में प्रकट हुए जब हिंदू-मुस्लिम मतभेद, ब्राह्मणवादी रूढ़ियों और सामाजिक असमानताएँ अपने चरम पर थीं। कबीर न तो किसी विशेष धार्मिक संस्थान

से जुड़े थे और न ही उन्होंने औपचारिक शिक्षा प्राप्त की थी, फिर भी उनके विचारों की गहराई और व्यापकता ने उन्हें भारतीय ज्ञान परंपरा में अद्वितीय स्थान प्रदान किया।

**भारतीय ज्ञान परंपरा में कबीर की भूमिका एवं ज्ञान का जनतंत्रीकरण** - भारतीय ज्ञान परंपरा प्राचीन काल में संस्कृत जैसी कठिन भाषाओं में संरक्षित थी, जिसे केवल विशेष वर्ग ही समझ और प्रचारित कर सकते थे। कबीर ने ज्ञान को संस्कृतनिष्ठ और ब्राह्मणिक संरचनाओं से मुक्त कर सर्वसुलभ बनाया। वे मानते थे कि ज्ञान का उद्देश्य आत्मबोध समाज-सुधार और ईश्वर से सीधा संपर्क स्थापित करना होना चाहिए। उन्होंने अवधी, भोजपुरी और खड़ीबोली जैसी लोकभाषाओं में अपनी वाणी को अभिव्यक्त किया, जिससे ज्ञान का लोकतंत्रीकरण हुआ।

**“पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखि लिखि भया जू ईटा**

**कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छीटा।**

**पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।**

**ढाई पढ़ि आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।”<sup>2</sup>**

कबीर शास्त्रों से अधिक प्रेम को ज्ञान का मूल मानते थे, और इसे सीखने के लिए किसी विशेष भाषा या जाति की आवश्यकता नहीं बताते। कबीर के लिए ज्ञान कोई दार्शनिक कल्पना या शुष्क तर्क नहीं था, बल्कि एक जीवंत अनुभव था जो आत्मानुभूति से प्राप्त होता है। उन्होंने बाह्य आडंबरों और कर्मकांडों की आलोचना करते हुए आंतरिक जागरण को ही सच्चा ज्ञान बताया।

**“माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।**

**कर का मनका छोड़ि के, मन का मनका फेर।”<sup>3</sup>**

उनका मानना है कि बाह्य जप और तप तभी सार्थक हैं जब अंतःकरण शुद्ध हो।

कबीर ने समाज में व्याप्त जाति, पंथ और वर्ण के भेदभाव को चुनौती दी। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ज्ञान और आत्मा का कोई जाति या धर्म नहीं होता। वे भारतीय सामाजिक संरचना के आलोचक थे और समता पर आधारित समाज की कल्पना करते थे। कबीर ज्ञान को केवल दार्शनिक विमर्श नहीं मानते, बल्कि सामाजिक पुनर्रचना का आधार भी बनाते हैं। उन्होंने जातिवाद, धार्मिक पाखंड, लिंग भेद और छद्म आचरण का तीखा खंडन किया। कबीर का कहना है कि ज्ञान से ही व्यक्ति की पहचान है जो समाज में समतामूलक दृष्टि देता है-

**“जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।**

**मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।”<sup>4</sup>**

भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु का स्थान सर्वोपरि रहा है। कबीर इस परंपरा को स्वीकार करते हुए उसे आध्यात्मिक रूप में और गहराई देते हैं। वे गुरु को माध्यम नहीं, बल्कि साक्षात् मार्ग मानते हैं। उनके लिए गुरु वह चेतना है जो आत्मज्ञान की ओर ले जाती है। उसे ईश्वर से भी ऊंचा स्थान दिया गया है। वैसे गुरु का महत्व सगुण भक्ति धारा में भी स्वीकार किया गया है, किन्तु कबीरदास ने उसे जितना महत्व दिया, वह पूरी साहित्य परम्परा में दुर्लभ है।

**“सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।**

**लोचन अनंत उघाडिया, अनंत दिखावणहार।”<sup>5</sup>**

कबीर भारतीय भक्ति आंदोलन के प्रमुख स्तंभ थे, विशेषकर निर्गुण शाखा के। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, पाखंड और दिखावे के विरुद्ध आवाज उठाई। उनका भक्ति मार्ग ईश्वर को एक निराकार सत्ता मानता है, जिसे ज्ञान और ध्यान से ही अनुभव किया जा सकता है। यह भावना कबीर को भक्त और ज्ञानयोगी दोनों बनाती है।

**“मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।**

**ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना कावे कैलाश में।”<sup>6</sup>**

अगर हम देखें तो कबीर के दोहे और पद आज भी गाँव-गाँव में गाए जाते हैं, लोकगीतों, कथाओं और रामचरितमानस की मंडलियों में उनका प्रयोग होता है। उनका साहित्य केवल ग्रंथों में नहीं, बल्कि लोकजीवन और संस्कृति का हिस्सा बन चुका है। यह उनकी ज्ञान परंपरा में स्थायित्व को दर्शाता है।

हम सभी जानते हैं कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ था, जो भारतीय इतिहास का संक्रमण काल था। एक ओर दिल्ली सल्तनत और सूफी परंपरा का प्रभाव, दूसरी ओर ब्राह्मणवादी कर्मकांड और सामाजिक विषमता। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज को एक नई वैचारिक दिशा दी। कबीर उसी आंदोलन के सर्वाधिक प्रखर स्वर थे, जिन्होंने ज्ञान, भक्ति और सामाजिक समता को एक सूत्र में बाँधा।

भारतीय ज्ञान परम्परा में कबीरदास के ज्ञान की दो भूमिकाएँ हैं - एक चिंतन पर आधारित है दूसरा लोक कल्याण पर। जहाँ वे सुधार के प्रस्ताव एवं कुत्साओं की भर्त्सना करके विषमता को समता से पाटना चाहते हैं। दूसरी भूमिका पर वे परमात्मा के प्रेम में निमग्न होते चले जाते हैं। उनके प्रेम की चरम परिणति प्रिया, प्रेम और प्रेमी की एकता में होती है।

कबीरदास का ज्ञान क्षेत्र अद्वैतवाद है, किन्तु प्रेम क्षेत्र के पथिक कबीरदास का प्रस्थान बिंदु द्वैतपरक है। प्रेम दो बीच का भाव है अर्थात् ‘आश्रय’ और ‘आलम्बन’ के बीच में प्रेम पुल का काम करती है किन्तु प्रेम की एक विशेषता है कि वह अपनी अनन्यता की दशा में प्रेमी को प्रियमान कर देता है। इस तथ्य की पुष्टि कबीरदास ने अपने इन कथनों में किया है -

**“तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ।**

**वारी फेरी बलि गई, तित देखीं तित तूँ।”<sup>7</sup>**

अर्थात् प्रेम अपने प्रारम्भ में द्वैतवाद तथा परिणति में अद्वैतवाद है। योग साधना को भारतीय ज्ञान परम्परा में सर्वोच्च स्थान दिया गया है। साथ ही साथ कबीरदास के जीवन दर्शन में भी योग साधना का प्रमुख अंग रहा है। योग उनकी व्यक्तिगत साधना है जिसका सम्बन्ध केवल उन्हीं से है, किन्तु प्रेम में उनकी व्यक्तिगत साधना होती हुई भी उसका उदय प्रसार से होता है जहाँ योग का कोई काम नहीं है, किन्तु ज्ञान उस प्रसार के विश्लेषणात्मक बोध के लिए भी आवश्यक रहा है। हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि, “जिस दिन से महागुरु रामानन्द ने कबीर को भक्ति रूपी रसायन दी, उस दिन से उन्होंने सहज समाधि की दीक्षा ली, आँख मुंदने और कान सुनने के टंटे को नमस्कार कर लिया, मुद्रा और आसन की गुलामी को सलामी दे दी।”<sup>8</sup> कबीरदास गोरखनाथ के नाथपंथ के योग मार्ग से आगे बढ़कर रामानन्द की भक्ति को अपनाकर निर्गुण भक्ति की स्थापना की। उनकी सखियों में योग एवं भक्ति दोनों के दर्शन मिलते हैं।

कबीरदास ने योग और भक्ति की परम्पराओं में गहरा संश्लेषण किया है। जो परम्पराएँ पूर्णतः एक दुसरे के विपरीत नजर आती थी, उनके तत्वों को कबीरदास ने इतनी गहराई से मिलाया कि दोनों एक ही हो गये, परन्तु कबीरदास को यह परम्परा अटपटी सी लगी, उन्होंने भक्ति में निहित प्रेम और अनुभूति के तत्वों को स्वीकार किया किन्तु इस सरलता या कमजोरी को नहीं। उन्होंने भक्ति मार्ग के भीतर योगियों वाली अकखड़ता और आक्रामकता को समाविष्ट कर दिया और प्रचंड आत्मविश्वास से कहा-

**“कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।**

**सीस उतारे हाथि करि, सों घर पैसे माहिं।”<sup>9</sup>**

प्राचीन काल से ही समाज में कोई न कोई व्यक्ति सामाजिक अन्यायों का विरोध करता आ रहा है लेकिन मध्यकाल के अधिकांश संत कवि समाज के निम्न वर्ग से सम्बन्धित थे। उन्होंने अपने जीवन में सामाजिक विषमता और तद्वर्जित अन्यायों को देखा भोग था। उनमें इसके प्रति विरोध भावना होनी

आवश्यक ही नहीं वरन स्वाभाविक था। प्रारम्भ में विशेषतः महाराष्ट्र के संतो में विरोध का यह स्वर सरल सहज था, किन्तु कबीरदास में आकर तो यह आक्रोश और कटुतर बन गया। इसका एक कारण कबीरदास की निर्भीकता और अखंडता भी थी। कबीरदास ने अपने समकालीन समाज और उसके विविध पक्षों पर कटु-तीखे प्रहार किए हैं। उनकी इन व्यंग्योक्तियों ने उनको समाज सुधारक और युग नेता तक बना दिया है। कबीरदास के शब्दों में

**“जाति पाति पूछे नहीं कोई,  
हरि को भजे सो हरि को होई।”<sup>10</sup>**

कबीर के सन्दर्भ में प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त की टिप्पणी सटीक लगती है, “समाजिक शोषण, अनाचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में आज भी कबीर का काव्य एक तीखा अस्त्र है। कबीर से हम रूढ़िगत सामन्ती दुराचार और अन्यायी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध डटकर लड़ना सीखते हैं और यह भी सीखते हैं, कि विद्रोही कवि किस प्रकार अंत तक शोषण के दुर्ग के सामने अपना माथा ऊँचा रखता है।”<sup>11</sup>

भारतीय परंपरा में ज्ञान अक्सर कठिन, दार्शनिक और अभिजात्य भाषाओं में संप्रेषित हुआ। कबीर ने इसे सधुक्कड़ी, भोजपुरी, अवधी, खड़ी बोली आदि में अभिव्यक्त कर जनसंचार को सशक्त किया। उनकी भाषा में भाव की तीव्रता, व्यंग की धार और गहराई की सहजता निहित है। उनकी रचनाएँ साखी, सबद और रमैनी में ज्ञान की ऐसी धारा है, जो आज भी लोकमानस को स्पर्श करती है। कबीर केवल संत या कवि नहीं, एक दार्शनिक समन्वयकर्ता थे। वे अद्वैत वेदांत से आत्मा-ब्रह्म एकत्व लेते हैं। बौद्ध नास्तिकता से जगत की माया का निरूपण करते हैं। सूफीवाद से प्रेम और आत्मसमर्पण का भाव ग्रहण

नाथ संप्रदाय से योग और आत्मसाक्षात्कार के करते हैं। नाथ संप्रदाय से योग और आत्म-साक्षात्कार के साधन अपनाते हैं। कबीर की यही समन्वयशीलता भारतीय ज्ञान परंपरा को समावेशी और बहुलतावादी बनाती है। आज के दौर में जहाँ शिक्षा प्रणाली फिर से केवल प्रमाणपत्रों और तथाकथित ‘बौद्धिकता’ पर केंद्रित हो गई है, कबीर की वाणी पुनः हमें ज्ञान की आत्मिकता, सामाजिकता और मानवतावादी दृष्टिकोण की याद दिलाती है।

## निष्कर्ष

कबीर भारतीय ज्ञान परंपरा के ऐसे युगद्रष्टा थे, जिन्होंने ज्ञान को लोकचेतना, सामाजिक न्याय और आत्मबोध को माध्यम बनाया। वे परंपरा के भीतर रहते हुए उसका आलोचनात्मक पुनर्निर्माण करते हैं। उनका योगदान भारतीय ज्ञान परंपरा को संवेदनशील, लोकतांत्रिक, समावेशी और अनुभूतिपरक बनाता है। कबीर की वाणी आज भी हमें यह सिखाती है कि सच्चा ज्ञान वह है जो हृदय को उदार, बुद्धि को विवेकशील और समाज को समतामूलक बनाए। उन्होंने अपने जीवनानुभव ज्ञान और वाणी के माध्यम से समाज में हो रहे बुराईयों को दूर कर मानवता को स्थापित करने का प्रयास किया और यह सिद्ध भी किया कि मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। इस प्रकार, कबीर भारतीय ज्ञान परंपरा के माध्यम से सामाजिक एकता, साम्प्रदायिक सदभाव, योग, भक्ति और दर्शन को स्थापित करने में महती भूमिका निभायी है, जो आज भी प्रासंगिक है।

\*\*\*

## सन्दर्भ:

1. राय, डॉ. रिंजु और डॉ. अनुपम कुमार, भारतीय ज्ञान परम्परा अनुप्रयोग एवं सिद्धांत, किताबवाले प्रकाशन, संस्करण: 2024, पृष्ठ संख्या, 109
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, अठारहवीं संस्करण: 2013, पृष्ठ संख्या, 143
3. अग्रवाल, पुरुषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की: कबीर की कविता और उनका समय, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या, 65-66
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, अठारहवीं संस्करण: 2013, पृष्ठ संख्या, 247
5. दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, 2011 पृष्ठ संख्या, 49
6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, अठारहवीं संस्करण: 2013, पृष्ठ संख्या, 179
7. सिंह, डॉ. ठाकुर जयदेव और डॉ. वासुदेव, कबीर वाणी पियूष, विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वादश संस्करण: 2019, पृ. सं. 3
8. शाक्ता और भारद्वाज, डॉ. कमलेश और डॉ. अभिषेक कुमार, भारतीय ज्ञान परम्परा, एन.बी. प्रकाशन, प्रथम संस्करण: 2023, पृ. सं. 168
9. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, अठारहवीं संस्करण: 2013, पृ. सं. 129
10. शर्मा, सरनामसिंह, कबीर: एक विवेचन, हिंदी साहित्य संसार प्रकाशन, संस्करण: 1960, पृ. सं. 175
11. गुप्त, प्रो. प्रकाशचन्द्र, हिंदी साहित्य की जनवादी परम्परा, किताबमहल प्रकाशन, प्रथम संस्करण: 1953, पृ. सं. 61